ISSN 2349-3887

दोआबा

समय से संगत

क्या तुमने
उस औरत की
व्यथा पढ़ी है
जो
कोलाहल में
एहसास की
बर्फ़ीली ज़मीन पर
आग में तपे
अपने पैरों के नक़्श
छोड़ती
अभी-अभी
साये की तरह
आगे बढ़ी है

और
जो कोलाहल में
बर्फ़ की चिंगारियों से
अपनी मांग भरती
अभी-अभी
मौत की बेदी
चढ़ी है

बोलो
क्या तुमने
यह कथा
पढ़ी है
- जाबिर हुसेन

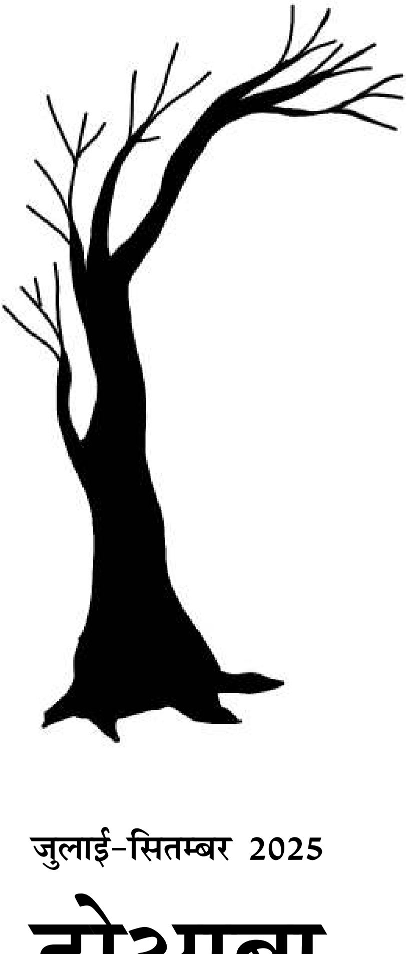

जुलाई–सितम्बर 2025

दोआबा

समय से संगत

दोआबा

समय से संगत

जुलाई-सितम्बर 2025
वर्ष 19 : अंक 53

रेखांकन

अनुप्रिया

मानद सहयोग

शहंशाह आलम
लता प्रासर, पवन कुमार, जावेद एक़बाल

प्रबंध

मोनिश हुसेन

कार्यालय : सुनील हेम्ब्रम

संपर्क
247 एम आई जी
लोहियानगर, पटना - 800 020
e-mail : doabapatna@gmail.com
मो.-08409044236

सर्वाधिकार सुरक्षित

पाकीज़ा ऑफसेट
शाहगंज, पटना-800 006
मो.-09334116542

मूल्य : ₹ 250/- (डाक खर्च सहित)

रचनाओं में अभिव्यक्त विचार रचनाकारों के अपने हैं।
संपादक का इन विचारों से सहमत होना ज़रूरी नहीं।

संपादक **: जाबिर हुसेन**
मो.-09431602575

जुलाई-सितम्बर 2025

दोआबा

समय से संगत

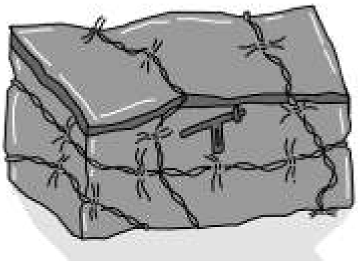

अनुक्रम

जाबिर हुसेन : अपनी बात / 05

कथा-डायरी

गोपाल माथुर : अपनी ही राख से उठते हुए / 07

रचना-समय

किरण अग्रवाल : किताबों से झांकते राजेन्द्र यादव / 90
रुचि भल्ला : वह जो एक इलाहाबाद था / 95
अंशु सिंह : कश्मीर यात्रा – एक ख़्वाब का सच से सामना / 111
श्रेष्ठ की खोज ही परंपरा की खोज है
प्रो. महेंद्र मधुकर से रजनीश कुमार की बातचीत / 123
उर्मिला शिरीष : बिंजो माई फ्रेंड / 136
विद्याभूषण : शायर, नजूमी और दोस्त / 148
किरण निशांत : फालतू सामान / 154
शिखा अग्रवाल : एक सुबह का इंतज़ार / 163
शीला श्रीवास्तव : जीने की राह / 169
पवन शर्मा : छांव जैसी औरतें / 172

कविता-समय

सुधांशु कुमार मालवीय / 176
प्रियदर्शन / 190
अवध बिहारी पाठक / 192
पूनम शुक्ला / 194
नूपुर अशोक / 197
कला कौशल / 200
प्रीति सिन्हा / 208
महेश कुमार केशरी / 212

संवाद

कोई फ्लेमिंगो कभी नीला नहीं होता (डॉ. निधि अग्रवाल)
चैताली सिन्हा : सत्ता बनाम संवेदना / 216

दोआबा-52 (अप्रैल-जून, 2025)

प्रेम कुमार : मन, भाव, सोच की अभिव्यक्ति / 226
हरिराम मीणा : विचारणीय अंक / 232
पूनम सिंह : समुद्र में खोई बूंद को ढूंढ़ने की कोशिश / 233
निधि अग्रवाल : संपादकीय प्रतिबद्धता / 234
अनवर शमीम : कहन की मनभावन शैली / 234
मार्टिन जॉन : मानवीय संबंधों का उद्‌घाटन / 235
श्यामल बिहारी महतो : कुशल संपादन / 237
राजेश कुमार मिश्र : मनुष्यता को बचाए रखने की कोशिश से भरा अंक / 238

□□

अपनी बात

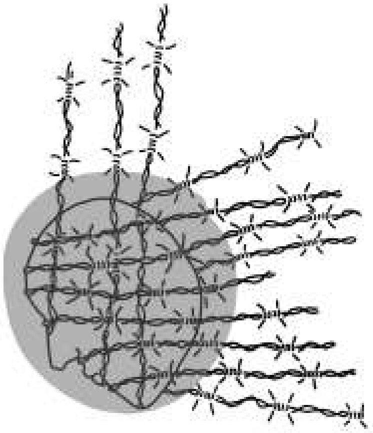

जाबिर हुसेन

□

दोआबा का यह अंक वरिष्ठ साहित्यकार गोपाल माथुर की लम्बी कथा-डायरी से आरंभ होता है। इससे पहले भी कई वरिष्ठ साहित्यकारों की रचनाओं को हम यथा सम्मान *दोआबा* के अंकों में जगह देते रहे हैं। कई कथा-डायरियां तो *दोआबा* के अंक में प्रकाशित होते ही पाठकों के बीच लोकप्रिय होती रही हैं। गोपाल माथुर की यह रचना भी अवश्य ही *दोआबा* के पाठकों को बेहद पसंद आएगी। इस रचना को एक महत्वपूर्ण स्थान देकर खुद मुझे ही बेहद खुशी हो रही है। इस रचना ने *दोआबा* के इस अंक की गरिमा में इज़ाफ़ा किया है। *दोआबा* के पन्ने ऐसी रचनाओं के लिए हमेशा ही खुले रहे हैं। आगे भी खुले रहेंगे।

रचना समय के अंदर किरण अग्रवाल का स्मृति-आलेख बहुत रोचक है। इस आलेख में वरिष्ठ कथाकार राजेंद्र यादव की कुछ स्मृतियां रौशन सितारे की तरह जगमगा रही हैं।

दोआबा के इस अंक के संयोजन-प्रकाशन में कुछ ज्यादा ही समय लग गया। देश और समाज की कतिपय घटनाओं ने इस विलंब में थोड़ी-बहुत भूमिका निभाई है।

आतंक, अविश्वास और विद्वेष की इन घटनाओं ने हमारे समय में चारों तरफ़ हिंसा की काली चादर फैला रखी है। हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन में हर दिशा में जो ज़हर घोल रखा है, उससे निबटने में साहित्यिक संवेदनाओं की सार्थक मुहिम को अभी और कितना समय लगेगा, कहना कठिन है। हम अपनी-अपनी जगह पूरी जवाबदेही और संवेदना के साथ इस मुहिम में जुटे रहें तो कुछ अच्छे नतीजों की आशा की जा सकती है।

□ □

दिल्ली से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका *अभिनव इमरोज़* ने अपने मई 2025 अंक में काफ़ी कुछ पठनीय सामग्री प्रकाशित की है। पत्रिका ने अपने अन्दरुनी पृष्ठ पर मेरी कुछ कविताओं का कोलाज छापा है।

ये कविताएं मेरे काव्य-संग्रह *जैसे रेत पर गिरती है ओस* से ली गई हैं। पुस्तक के आरंभ में प्रकाशित वरिष्ठ लेखक माननीय रमेश दवे की एक अत्यंत मूल्यवान टिप्पणी यहां प्रस्तुत है -

'जाबिर हुसेन की कविता के शिल्प की विशेषता यह है कि वे कविता में निरर्थक भावुकता नहीं रचते। वे कविता की आरायशी या सजावट-शृंगार में बिम्बों, प्रतीकों, अलंकारों या तशबीहों की फिजूलखर्ची नहीं करते और न किसी रहस्यवादी की तरह कविता का कोई अज्ञात दर्शन रचते हैं। उनके पास जो भाषा है, वह जीवन की भाषा है, मनुष्य के मनुष्यपन की भाषा है, न थोथा अध्यात्म है, न नकली क़िस्म का रोमांस या रोमांच। उन्होंने अपनी सभी कविताओं में शब्द, विचार और शिल्प की सघनता का संयम और संतुलन साधा है।

जाबिर हुसेन कविता में चौंकाने वाले चमत्कारिक प्रयोग नहीं करते, बल्कि सीधी-सरल ज़बान में जो कहते हैं, उससे उनके अन्दर के इंसान की आवाज़ सुनाई देती है। कभी-कभी तो सरलता में कोई बड़ी बात भी कह देते हैं। जैसे - *'मैंने कला-रेखाओं को / कैनवस की दरारों में / बदल दिया / इंसानी चेहरों को / ख़ौफ़ का पर्याय बना दिया।'*

जाबिर हुसेन के पास एक ऐसा ज़हीन सोच है, जो इतिहास की इबादत रचता हुआ इंसान की इबादत सा लगता है। क्योंकि फूल, कांटों की उदासी, बसंत, सूरज, चांद, धूप ये सब होते हुए भी जब कविता फसलों की अदालत में पहुंचती है तो कवि पर इल्ज़ाम है कि यह फसलों की पहचान नहीं रखता -*'बीच सरहद मेरा गांव है / वहां फूल नहीं होते / फ़सलें नहीं उगतीं / वहां आसमान में / फौजी विमान उड़ते हैं / जिनसे बमों की बारिश होती है / ... मैं बमों के फटने की आवाज़ पहचानता हूं ...'*

हिंसक हथियारों के खिलाफ़, एक कमसिन बच्चे के इस बयान पर अदालत बरी तो कर देती है, मगर वह बच्चा अपने बयान से क्या सारी युद्धोन्मादी दुनिया को मुजरिम नहीं बना देता है?'

मैं *अभिनव इमरोज़* के वरिष्ठ संपादक के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करते हुए उन्हें इस अंक के सफल संपादन-संयोजन के लिए आभार व्यक्त करता हूं।

कथा-डायरी

खिड़की के उस पार का आकाश कमरे में चुपचाप उतर आया है। पर मैं तुरंत जान जाता हूं कि यह वह आकाश नहीं है, जिसे कल रात मैंने खिड़की से देखा था। न ही यह परसों वाला आकाश है। मैं स्वयं भी तो कल वाला 'मैं' नहीं हूं, न ही परसों वाला! मुझे लगता है, जैसे मैं स्वयं को छल रहा हूं, ठीक वैसे ही, जैसे आकाश रोज खुद को छला करता है।

क्या मैं आकाश हो गया हूं या फिर आकाश 'मैं'?

मेरी आंखें तारों को नीचे खींच लाती हैं। सारा कमरा जुगनुओं की-सी उपस्थिति में टिमटिमाने लगता है। इन दिनों चन्द्रमा पता नहीं कब उगता है और कब डूब जाता है! कभी दिखा, तो पूछूंगा कि क्या उसने कभी सुख को देखा है? वही सुख, जो पिछले मोड़ पर मुझसे बिछुड़ गया था। शायद देखा हो! चन्द्रमा की आंखों में उसका पता लिखा होगा। मैं उस पते पर अपने बिछुड़े सुख से मिलने निकल पड़ूंगा।

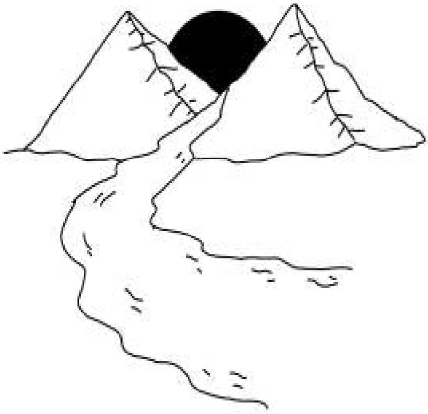- गोपाल माथुर